National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(65): 123-127
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

परमेश्वर नन्द
शोध छात्र, व्याकरण विभाग,
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय-
श्रीरणवीर परिसर जम्मू कश्मीर।

Correspondence:
परमेश्वर नन्द
शोध छात्र, व्याकरण विभाग,
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय-
श्रीरणवीर परिसर जम्मू कश्मीर।

रामायण एवं अर्थशास्त्र में सुशासन की अवधारणा

परमेश्वर नन्द

प्रस्तावना –

शासन का तात्पर्य शासन की सभी प्रक्रियाओं, संस्थाओं, प्रक्रियाओं और प्रथाओं से है जिनके माध्यम से आम जनता से संबंधित मुद्दों पर निर्णय लिए जाते हैं और उन्हें विनियमित किया जाता है। सुशासन शासन प्रक्रिया में एक मानक या मूल्यांकन संबंधी विशेषता जोड़ता है। मानवाधिकारों के परिप्रेक्ष्य से, इसका मुख्य अर्थ उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा सार्वजनिक संस्थाएँ सार्वजनिक मामलों का संचालन करती हैं, सार्वजनिक संसाधनों का प्रबंधन करती हैं और मानवाधिकारों की प्राप्ति सुनिश्चित करती हैं। सुशासन का सामान्य अर्थ है, अच्छा शासन। वह शासन जो जनता की उपेक्षा पर खरा हो सुशासन माना जाता है। कुछ लोग इसे ऐसा लोकतान्त्रिक शासन मानते है जो प्रभावी और कार्य कुशल है। लेकिन विद्वानों का प्रायः मानना है कि शासन पद्धति कोई भी हो, सुशासन का सम्बन्ध जनता को दी जाने वाली सेवाओं और उनकी गुणवत्ता से है। किसी भी सामाजिक-राजनीतिक इकाई का इस तरह से कार्य करना की वो वांछित परिणाम प्रदान करे सुशासन है। सुशासन का संबंध विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक राजनीतिक और संस्थागत प्रक्रियाओं और परिणामों से है। सुशासन की असली कसौटी यह है कि वह मानवाधिकारों - नागरिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों - के वादे को किस हद तक पूरा करता है। निष्पक्ष न्याय करना एवं अपराधी को दंड देना राज्य के प्रमुख कार्यों में से है। लोगों के विवादों को निपटाने की न्याय पूर्ण व्यवस्था राजधर्म है। मनु ने तो न्याय शासन को ही धर्म का पर्याय कहा है। वे कहते हैं कि जिस राज्य में निरपराधी दंडित हो और अपराधी छूट जाएं, उस राज्य के राज्यकर्ता पापी हैं और नरक में पड़ेंगे। रामायण और महाभारत दोनों में राजा से न्याय व्यवस्था सुनिश्चित करने को कहा गया है। इसीलिए हमारे यहां व्यवहार पदों पर विस्तृत विचार होता रहा है। धर्म, व्यवहार चरित्र और राज्य शासन – ये किसी भी विवाद में अंतिम निर्णय के चार पद हैं। इसी प्रकार, अभियोग, उत्तर, परीक्षण क्रिया एवं निर्णय – ये चार चरण न्याय प्रक्रिया के हैं। इन सब की व्यवस्था राजधर्म का अंग है। राजधर्म का पालन ही सुशासन है।

कूट शब्द -
शासन-व्यवस्था, सुशासन, विधि का शासन, समानता, समावेशन, शासन शुचिता, पारदर्शी शासन, उत्तरदायी शासन।

सुशासन की व्यवस्था –

भारत में सुशासन सतत विकास, सामाजिक समानता और आर्थिक विकास की आधारशिला है। इसमें पारदर्शिता, जवाबदेही, विधि का शासन और समावेशी भागीदारी शामिल है, जिससे सभी नागरिकों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं का ध्यान रखा जा सके। स्वतंत्रता के बाद से, भारत ने लोकतांत्रिक

संस्थाओं के निर्माण, पंचायती राज के माध्यम से विकेंद्रीकरण को बढ़ावा देने और प्रशासनिक दक्षता बढ़ाने के लिए सुधारों को लागू करने में महत्वपूर्ण प्रगति की है। हालांकि, भ्रष्टाचार, नौकरशाही में देरी और संसाधनों तक असमान पहुंच जैसी चुनौतियां अभी भी बनी हुई हैं। भारत सरकार ने शासन व्यवस्था को मजबूत करने के लिए डिजिटल शासन (ई-गवर्नेंस) और भ्रष्टाचार-विरोधी उपायों जैसी कई पहलें की हैं। भारत में सुशासन केवल एक नीतिगत लक्ष्य नहीं बल्कि एक न्यायपूर्ण, समान और समृद्ध समाज की परिकल्पना को साकार करने के लिए एक आवश्यकता है।

<u>रामायण में सुशासन</u> –

साहित्य का कर्त्ता व्यक्ति होता है और व्यक्ति समाज का अंग होता है और वह समाज से ही साहित्य सृजन की प्रेरणा एवं सामग्री ग्रहण करता है। साहित्यकार चाहे अथवा न चाहे, वह समाज द्वारा प्रभावित होता ही रहता है। जीवन और साहित्य की प्रेरणाएँ समान होती हैं। वे पुरुषार्थ चतुष्टय तथा तीन ऐषणाओं में समाहित हो जाती है। साहित्य मानव जीवन के सुख-दुख, हर्ष-विषाद एवं आकर्षण-विकर्षण के ताने-बाने से निर्मित होता है और उसमें मानव की आत्मा का स्पन्दन प्रतिफलित होता है। महर्षि वाल्मीकि की आत्मा का स्पंदन उनके द्वारा विरचित प्रसिद्ध महाकाव्य रामायण में पग-पग पर हुआ है और उन्होंने भारतीय तत्कालीन समाज की वास्तविक झांकी इस महाकाव्य में प्रस्तुत की है वैसे तो सभी साहित्यकार समाज द्वारा प्रभावित भी होते हैं और वे समाज को प्रभावित भी करते हैं। विश्व में होने वाले आंदोलनों के मूल में साहित्यकारों की वाणी ही रही है। आप किसी क्रांति के इतिहास पर विचार करके देख लीजिए। उसकी मूल प्रेरणा साहित्य की प्रेरक रचनाएँ ही दिखाई देंगी। अपनी इन प्रेरक रचनाओं के कारण ही तुलसी, रूसो, कार्ल मार्क्स, गोर्की, प्रेमचन्द आदि साहित्यकार अमरत्व को प्राप्त हुए हैं। साहित्य के अन्तर्गत समाज की विभिन्न स्थितियों, परिस्थितियों और उसके आचार-विचारों एवं व्यावहारों का मिश्रण रहता है। साथ ही साहित्य समाज को संस्कार की प्रेरणा प्रदान करता है।

रामायण हमारी संस्कृति और समाज की प्रतिच्छाया है। किसी सभा, समुदाय या समाज में उठने बैठने तथा रहने योग्य मनुष्य को सभ्य कहा जाता है। उसी भाव को सभ्यता कहते हैं। सभ्यता हमारा बाह्य रहन-सहन, खान-पान, आचरण भौतिक विकास, पारिवारिक सामाजिक संस्कार आदि का परिचायक होता है। संस्कृति हमारी आंतरिक सोच, ज्ञान-विज्ञान आदि प्रेरक तत्त्वों को दर्शाती है। वैसे देखा जाए तो आंतरिक आचरण ही बाह्य आचरण का कारण होता है। रामायण में भारतीय संस्कृति की झलक बखूबी मिलती है, न केवल झलक बल्कि सम्पूर्ण ग्रंथ ही भारतीय संस्कृति का परिचायक है। रामायण के विषय में कहा भी गया है -

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावत् रामायण कथा लोकेषु प्रचरिस्यति।।[1]

काव्य का प्रयोजन होता है **रामादिवत् प्रवर्तितव्यम् न रावणादिवत्**[2] अर्थात् हमें श्रेष्ठ पुरूषों राम आदि के समान आचरण करना चाहिए रावण आदि के समान नहीं।

उपरोक्त विचार भारतीय संस्कृति की विशेषता है जिनका निर्वाह सम्पूर्ण ग्रंथ में बखूबी दर्शनीय है। इस शोध पत्र में ऐसी बहुत सारी बातों को विश्लेषित करेंगे जो रामायण में भारतीय समाज के स्वरूप को प्रदर्शित करने वाली हैं—

<u>संयुक्त परिवार प्रणाली :-</u>

"रामायण काल में संयुक्त परिवार प्रणाली का प्रचार था। परिवार का मुखिया पिता होता था तथा परिवार के अन्य समस्त प्राणी उसकी आज्ञा का पालन करते थे। यद्यपि पत्नी गृह की संचालिका होती थी तथा गृह में उसकी सत्ता सर्वोपरि मानी गई थी, किन्तु फिर भी अपने पति के अधीन होती थी। संतान का परम कर्तव्य था अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन करना। माता-पिता का परिवार में समान स्थान था इसी महत्व के आधार पर कौशल्या ने राम से कहा था 'जिस गौरव से राजा तुम्हारे पूज्य हैं, उसी गौरव से मैं भी पूज्य हूँ। अतः मैं तुमको मना नहीं कर रही हूँ कि तुम वन मत जाओ।"

यदैव राजा पूज्यस्ते गौरवेण तथा ह्यहम् ।
त्वां साहं नानुजानमि न गन्तव्यमितो वनम् ।।[3]

गृह में प्रमुख प्रभुता रखते हुए भी पत्नी का परम धर्म अपने परिवार की परम्पराओं और मर्यादाओं की रक्षा करना था। अपने इसी धर्म का परित्याग कर देने के कारण कैकेयी कुलघातीनी आदि शब्दों की पात्र बनी। गृह प्रबंध के साथ ही अपने गुणों के आधार पर पति के मन पर अपना पूरा अधिकार रखती थी। वस्तुतः आदर्श पत्नी वही मानी जाती थी जिसमें दासी, सखी, पत्नी, भगिनी एवं माता इन समस्त रूपों का समावेश हो।

यदा यदा च कौशल्या दासीव च स भार्यावद् भगिनीवच्च मातृवच्चोपतिष्ठति ।[4]

<u>नारी का स्थान सम्मानीय :-</u>

नारी अपने सदाचरण से ही अपने आपको वन्दनीया, सम्माननीया बनाती है। सती अनुसूया का सदाचार पतिव्रत इतना उत्कृष्ट है कि वे सर्ववन्दनीया थी। इसी प्रकार शबरी हीन जाति की होते हुए भी भक्ति भावना के कारण ऋषियों द्वारा सम्मानित हुई। सीता का चारित्रिक महात्मय इतना महान था कि ये जगजननी सीता कहलाई। विवाह का आधार प्रीति ही था, राम-सीता के दाम्पत्य को आदर्श बनाने वाली परस्पर प्रति अनन्यता, संवेदना, परस्पर सुख दुःख अनुभव ही है। गृहस्थाश्रम में धर्म, अर्थ तथा काम का संतुलन बनाए रखना आवश्यक था।

सतीत्व धर्म सर्वोपरि :-

अशोक वाटिका में रावण ने सीता को भांति-भांति के प्रलोभन दिए किन्तु पतिव्रता सीता ने रावण को धिक्कारते हुए गर्जना कि मैं पुरुषसिंह रामचन्द्र के अनुकूल रहने वाली उनकी पत्नी हूँ तू गीदड़ होकर मुझे छूना चाहता है, जिस प्रकार सूर्य की प्रभा को छुआ नहीं जा सकता उसी प्रकार तू भी मुझे छू नहीं सकता। सीता ने कहा था दीन हो या राजच्युत, पति ही मेरा गुरु है। चन्द्रमा का उष्ण अग्नि का शीतल होना और सतीत्व पथ पर अटल थी। अपने सतीत्व के प्रभाव से सीता ने हनुमान की पूछ की अग्नि को शांत कर दिया।

माता के रूप में सर्वोच्च नारी:-

प्रत्येक काल अथवा शास्त्र में सामाजिक अथवा नैतिक सभी दृष्टियों से माता के रूप में नारी का सर्वोच्च मातृत्व है। माँ बनकर ही वह जननी, जाया और यात्री कहलाती है। संतान के चरित्र निर्माण की मूलाधार माता ही मानी जाती थी, पिता नही। माता पुत्र के संबंध गौ-वत्स प्रेम के समान महत्वपूर्ण थे। कौशल्या राम का अनुगमन के वत्सानुगमिता गौ की भांति उद्यत हो गयी थी। किन्तु फिर भी नारी के लिए पति तथा पुत्र के मध्य पति प्रेम को ही प्रधानता प्राप्त हुई। सुमंत्र ने कैकेयी से कहा था कि करोड़ो पुत्रों से भी पति अधिक महत्त्वशाली है।

रामायणकालीन सामाजिक पृष्ठभूमि :-

प्रत्येक व्यक्ति अपने ज्ञान एवं विचार के अनुरूप ही आचरण करता है और जैसा करता है वैसा ही बन जाता है। जीवन का यही सूत्र है। महर्षि वाल्मीकि ने रामायण के माध्यम से मानव जीवन या मानव सभ्यता के विकास में अपेक्षित सभी गुणों की आवश्यकताओं की चर्चा की है. जिसकी विश्व की प्रत्येक सभ्यता को सदा आवश्यकता रहेगी। कुछ विचारणीय बिन्दु निम्न हैं -

रामायण में वर्णित रामराज्य की समस्त प्रजा वेदज्ञ थी। ज्ञान सम्पन्न शूरवीर संसार के कल्याण में संलग्न तथा समस्त मानवीय गुणों जैसे दया, सत्यपरता, पवित्रता, उदारता आदि से युक्त थे।

सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे लोकहिते रताः।
सर्वे ज्ञानोपसम्पन्नाः समुदिता गुणैः ।।"[5]

समाज के सभी वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र एक दूसरे को सहयोग करते रहते थे। जाति भेद या वर्ण भेद की दूषित भावना नहीं थी। सभी को समान अधिकार तथा न्याय प्राप्त होता था इसलिए कि भारतीय समाज एवं संस्कृति की सबसे प्रमुख विशेषता समन्वयवादिता है।

ब्रह्मक्षत्रमहिसन्तस्ते कोशं संपूरयन् सुतीक्ष्णदण्डाः संप्रेक्ष्य पुरूषस्या बलाबलम् ।।

रामायण एक ऐसे सभ्य एवं स्वस्थ समाज के निर्माण का संदेश देता है जिस समाज में धार्मिक न्यायप्रिय राजाओं के सुशासन में संपूर्ण समाज धन-धान्य से युक्त हो सभी गौ आदि पशु समृद्ध, अश्वादि आशुगामी वाहनों से युक्त तथा कोई भी निर्धन न हो क्योंकि **"सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः"** इस नीति की उक्ति भी भारतीय सामाजिक संस्कृति की प्रमुख पहचान है। **"धेनु" सदनं रयीणाम्** अर्थात् गाय सर्वाधिक धन समृद्धि की खान है जिसे भारतीय सामाजिक संस्कृति में भी पशुओं में सर्वोच्च स्थान दिया गया है तथा इसकी पूजादि का भी विधान है। प्राकृतिक एवं शुद्ध गौ वंश की रक्षा कर हम मानव सभ्यता एवं भारतीय संस्कृति को स्वस्थ एवं दीर्घायु कर सकते हैं। रामायणकालीन भारतीय समाज की सभ्यता एवं संस्कृति का वर्णन करते हुए वाल्मीकि मुनि जी कहते हैं कि "अयोध्या नगरी में कोई नर-नारी, कामी, कंदर्प, निष्ठुर, मूर्ख और नास्तिक नहीं था। सभी नर-नारी धार्मिक, जितेन्द्रिय महर्षियों के समान सच्चरित्र एवं शालीन थे। रामायण भारतीय समाज का मूल स्रोत है। यह भारतीय संस्कृति का आधार है। यह एक ऐसा ग्रंथ अथवा विषय है जिस पर सैंकड़ों वर्षों से ग्रंथ एवं टीकाएँ लिखी जा रही हैं। यह ग्रंथ भारत के अलावा विश्व की विभिन्न भाषाओं में लिखा गया है। साहित्यिक रचनाओं का उपजीव्य आधार के रूप में रामायण आज भी समस्त भारतीय भाषाओं के लिए अक्षयकोष है। इसके साथ-साथ रामायण हमारी राष्ट्रीय अस्मिता और सांस्कृतिक चेतना का निर्विकल्प आश्रय भी है। रामायण में तत्कालीन समाज के रीति-रिवाजों और शासन पद्धति (राम राज्य) का वर्णन किया गया है। शाश्वत मूल्यों के विकास में इसकी महत्ता आज भी उतनी ही है जितनी प्राचीनकाल में थी। रामायण की रचना मानव जीवन के सर्वांगीण विकास एवं शाश्वत जीवन मूल्यों को प्रेरित करने वाली है। ये जीवन मूल्य हमारे सांस्कृतिक मूल्य भी है। इस प्रकार संपूर्ण ग्रंथ हमारे सांस्कृतिक मूल्यों से ओत-प्रोत हैं।

अर्थशास्त्र में सुशासन की अवधारणा - आचार्य कौटिल्य प्रणीत अर्थशास्त्र सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सिद्धांतों को अभिव्यक्त करने वाला मत्वपूर्ण धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ है। आचार्य कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित अधिकांश सिद्धांत देश, काल, परिस्थिति इत्यादि की सीमाओं के बंधनों से स्वतंत्र है, जो इन्हें इतने हजारों वर्ष बाद भी एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ के रूप में प्रासंगिक बनाए हुए है। आचार्य कौटिल्य का राजनैतिक सिद्धांत अनेक भारतीय विचारकों व धर्मशास्त्रविदों तथा पाश्चात्य राजनैतिक विचारकों से भिन्न है। आचार्य राज्य को प्रजा के सेवक व सहायक के रूप में अधिक महत्व देते हैं तथा अपने राजनैतिक सिद्धांतों के मध्य में प्रजा को रखते हैं। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में राजा के अधिकार व महत्व से अधिक उसके कर्तव्य व उत्तरदायित्व को प्राथमिकता दी है। कौटिल्य का राजनैतिक दर्शन सर्वसमावेशी व्यापक व जनकल्याणकारी है, जिसका उद्देश्य लोककल्याण के साथ-साथ अच्छे शासन/प्रशासन अर्थात सुशासन कि स्थापना करना है।

कौटिल्य के सुशासन में सम्मिलित प्रमुख सिद्धांत हैंः

राजा का धर्मानुकूल शासनः कौटिल्य का मानना था कि राजा को धर्म के अनुसार शासन करना चाहिए, जिसका अर्थ है कि उसे नागरिकों के कल्याण को सर्वोपरि रखना चाहिए। कौटिल्य ने प्रजा के सहयोग को सुशासन के लिए आवश्यक माना है। उन्होंने कहा है कि राजा को प्रजा की राय का सम्मान करना चाहिए और उनके सुझावों को सुनना चाहिए। कानून का शासन कौटिल्य का मानना था कि सुशासन के लिए कानून का शासन आवश्यक है। उन्होंने कहा है कि राजा को भी कानून का पालन करना चाहिए और किसी को भी कानून से ऊपर नहीं समझना चाहिए। ईमानदार और कुशल प्रशासन कौटिल्य ने ईमानदार और कुशल प्रशासन को सुशासन के लिए आवश्यक माना है। उन्होंने कहा है कि राजा को ऐसे मंत्रियों और अधिकारियों को नियुक्त करना चाहिए जो ईमानदार, कुशल और योग्य हों। प्रजा का कल्याण कौटिल्य ने सुशासन का उद्देश्य प्रजा का कल्याण माना है। उन्होंने कहा है कि राजा को प्रजा की मूलभूत आवश्यकताओं जैसे कि भोजन, वस्त्र, आवास और शिक्षा की पूर्ति सुनिश्चित करनी चाहिए।

कौटिल्य ने सुशासन प्राप्त करने के लिए विभिन्न उपायों का भी वर्णन किया है राज्य के विभागों का संगठनः कौटिल्य ने राज्य के विभिन्न विभागों का संगठन किया और प्रत्येक विभाग के कार्यों और जिम्मेदारियों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया। अधिकारियों की नियुक्ति और पदोन्नतिः कौटिल्य ने अधिकारियों की नियुक्ति और पदोन्नति के लिए एक व्यवस्थित प्रणाली विकसित की। उन्होंने कहा है कि अधिकारियों की नियुक्ति उनकी योग्यता और अनुभव के आधार पर होनी चाहिए। वेतन और भत्तेः कौटिल्य ने अधिकारियों के वेतन और भत्ते का निर्धारण किया। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि अधिकारियों को पर्याप्त वेतन और भत्ते मिलें ताकि वे ईमानदारी से अपना काम कर सकें। भ्रष्टाचार की रोकथामः कौटिल्य ने भ्रष्टाचार की रोकथाम के लिए विभिन्न उपाय किए। उन्होंने भ्रष्ट अधिकारियों को कड़ी सजा देने का प्रावधान किया।

कौटिलीय अर्थशास्त्र में विधि का शासन -

लोकतान्त्रिक व्यवस्था एवं सुशासन के प्रमुख स्तम्भ विधि का शासन का सामान्य अर्थ है विधि सर्वोपरि है, विधि के समक्ष सभी समान हैं तथा विधि के उल्लंघन पर समान अपराध हेतु समान दण्ड का प्रावधान है। इसके अंतर्गत सरकार किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के विचारों के बजाए विधि के सिद्धांतों द्वारा मार्गनिर्देशित होती है। यह सरकार की स्वेक्षाचारिता को प्रतिबंधित करता है तथा शासन को विधि के अनुरूप चलाने की प्रेरणा देता है। यद्यपि कौटिल्य ने राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था का वर्णन किया है तथापि कौटिलीय राजा शासन का सर्वोच्य अधिकारी होते हुए भी निरंकुश नहीं है। कौटिल्य के मत में शासक द्वारा मनमाने ढंग से किये गये शक्ति के प्रयोग की तुलना में शासक का न होना अधिक उचित है। आचार्य कौटिल्य ने विभिन्न प्रकार के धार्मिक तथा सामाजिक बन्धनों के द्वारा स्वयं राजा को विधि के अधीन कर प्रजा के सेवक के रूप में वर्णित किया है। आचार्य लिखते हैं कि

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम् ।
नात्मप्रिय हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ।।[6]

अर्थात् "प्रजा के सुख में राजा का सुख और प्रजा के हित में राजा का हित है। अपने आप को अच्छे लगने वाले कार्यों को करने मे राजा का हित नहीं, बल्कि उसका हित तो प्रजाजनों को अच्छे लगने वाले कार्यों के सम्पादन करने में है"। महाभारत में भी राजा को शास्त्रानुसार आचरण करने और करवाने वाला अधिपति के रूप में बताया गया है। प्राचीन राजशास्त्र में नीतिनिपुण राजा को ही राज्य का आधार बताया गया है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में राज्य एवं शासन-व्यवस्था प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में भारतीय राजशास्त्र के चिन्तकों ने राज्य तथा शासन के एक विस्तृत रुप की परिकल्पना की है। यहां राज्य भूमि का एक टुकडा तथा शासन केवल एक सामंती व्यवस्था नहीं है। प्राचीन राजशास्त्रियों ने राज्य की कल्पना एक विशाल वटवृक्ष के सदृश की है जैसे वटवृक्ष विभिन्न शाखाओं-प्रशाखाओं तथा जड़ों का समष्टि रूप है उसी प्रकार राज्य भी विभिन्न प्रकार के अंगों तथा उपांगों का समष्टि रूप है। अमरकोष तथा कामन्दकीयनीतिसार में इसको अंग कहा गया है जबकि महाभारत मनुस्मृति और अर्थशास्त्र में इनको प्रकृति के कहा गया है। इनके विवेचन के द्वारा राज्य के विभिन्न बिंदुओं को समझा जा सकता है। इनके नाम और क्रम में किञ्चित भेद दिखाई देता है, किन्तु तात्पर्यार्थ अधिकांशतः समान है। शुक्रनीति के अनुसार राज्य के सात अंग हैं स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोश, राष्ट्र, दुर्ग और बल। इनमें राजा को सिर माना गया है। मंत्री नेत्र, मित्र कर्ण, कोश मुख, बल (सैन्य) मन, दुर्ग दोनों हाथ और राष्ट्र दोनों पैर माने गये हैं। मनुस्मृति के अनुसार स्वामी अमात्य पुर राष्ट्र कोश दण्ड (सेना) और सुहृद् ये सात अंग हैं, इसलिए राज्य को सप्तांग कहते हैं। अर्थशास्त्र में आचार्य कौटिल्य लिखते हैं कि **स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः।** कामन्दकीयनीतिसार में सप्तांग के महत्व पर कथन है कि ये सातों अंग एक दूसरे के पूरक हैं अतः राजा का काम है कि वह इनमें से किसी भी एक की उपेक्षा न करे। भारतीय विचारकों ने राजा के दैवीय उत्पत्ति के सिद्धान्त का समर्थन किया है, इसी सिद्धान्त की परिपुष्टि महाभारत के विविध स्थलों पर भी की गई है। राजा द्वारा आवश्यकतानुसार इन्द्र, सूर्य, वायु, यम, वरुण, चन्द्रमा, अग्नि और पृथ्वी के कार्यविशेष के अनुकूल चरित्र को अपनाने के सिद्धान्त का प्रतिपादन राज्यशास्त्रज्ञों ने किया है। उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यद्यपि प्रथमदृष्टया राजा स्वामीरूप प्रतीत होता है, तथापि 'नारदस्मृति' के कथनानुसार वस्तुतः ब्रह्मा ने उस राजा को प्रजा के पालन के लिए स्वभाग-रूपी वृत्ति प्राप्त करने के कारण प्रजा का दास बनाया है।

निष्कर्ष –

सुशासन का सामान्य अर्थ एक ऐसी शासन व्यवस्था से है, जिसमें सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक प्रबंधनों के मध्य संतुलन हो तथा ये एक दूसरे के पूरक के रूप में स्थापित हों। सुशासन के प्रमुख तत्वों में विधि का शासन, समानता एवं समावेशन, भागीदारी अनुक्रिया, मतैक्य, प्रभावशीलता, दक्षता, पारदर्शिता, उत्तरदायित्व एवं शासन में शुचिता इत्यादि प्रमुख है। यद्यपि सुशासन कि अवधारण आधुनिक राजनीतिक शास्त्र की दृष्टि से नवीन संकल्पना है परंतु यह प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रीय राजव्यवस्था की मूल बिन्दु के रूप में स्थापित है। धर्मशास्त्रीय राजव्यवस्था में सुशासन के अन्तर्गत समाहित होने वाले अनेक बिंदुओं पर वेदों, धर्मसूत्रों, ब्राह्मणों इत्यादि में प्रयाप्त चर्चा है। महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में आचार्य कौटिल्य ने अपने ग्रंथ अर्थशास्त्र में जनकल्याण को आधार बनाकर राज्य एवं शासन व्यवस्था को सुदृढ एवं प्रभावी बनाने वाले अनेक उपायों एवं विधानों का उल्लेख किया है, जो आधुनिक युग में सुशासन के अंतर्गत पठित हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

अवस्थी, ए. पी . भारत में लोक प्रशासन . 2020.

अवस्थी, ए. पी. हिन्दू राष्ट्र - मिथक या कल्पना . 2025.

गिरीश कुमार. इतिहास पुरुष राजाधिराज श्रीराम . 2024.

गैरोला, वाचस्पति. कौटिलीय अर्थशास्त्रम् . 2022.

जैन, डॉ. राजा राम. एक भारत , श्रेष्ठ भारत . 2025.

नन्दलाल, सूर्यप्रसाद. भारत में सुशासन - चुनौतियां एवं समाधान . 2017.

पोरवाल, अशोक. हिन्दू दर्शन . 2017.

राव, लक्ष्मण. भारतीय अर्थशास्त्र एवं मौलिक सिद्धान्त . 2015.

वर्मा, डा. रंजना. वाल्मीकि रामायण प्रतिपादित सामाजिक व्यवस्था की आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता . 2019.

सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद. भारतीय दर्शन की रूपरेखा . 2018.

पादटिप्पणी -

[1] वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड

[2] नीति शास्त्र

[3] वाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड

[4] वाल्मीकि रामायण

[5] वाल्मीकि रामायण बाल काण्ड

[6] कौटिल्य अर्थशास्त्र अ.1